ओ३म्

वार्षिक शुल्क 50/- रु.
आजीवन 500/- रु.
इस अंक का मूल्य 5/- रुपये

आर्य प्रेरणा

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(आर्यसमाज राजेन्द्र नगर का मासिक मुख-पत्र)

दूरभाषः 011-25760006 Website - www.aryasamajrajindernagar.org सम्पादक : डॉ. भारद्वाज पाण्डेय

वर्ष-6 अंक 5, मास मई 2013 विक्रमी संवत् 2070, दयानन्दाब्द 189 सृष्टि संवत् 1960853112

वैदिक - ऋचाओं में समर्पण एवं प्रेम-भाव

- डॉ. श्रीराजेन्द्रजी 'जिज्ञासु'

ईश्वर की सत्तापर पश्चिम में जो एक पुस्तक लोकप्रिय हुई थी-फलिण्ट महोदय की 'Theism' (थीइज़्म) और आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के अनुसार अपने देश में ईश्वर की सत्तापर जो सर्वश्रेष्ठ पुस्तक प्रकाशित हुई वह है पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय द्वारा लिखित 'आस्तिकवाद'। 'आस्तिकवाद' के लेखक ने इसी विषय पर उर्दू में भी 'बारी ताला' नाम से एक बेजोड़ पुस्तक लिखी। ईश्वरविषयक इन दो अद्वितीय ग्रन्थों के लेखक ने अपने एक दार्शनिक ग्रन्थ में भक्त एवं भगवान् के भक्तिभाव या प्रेम को दर्शाने के लिये ऋग्वेद की एक अनूठी सूक्ति दी है। भक्त तथा भगवान् के प्रेम भाव के सम्बन्ध में संसार में कहीं भी किसी ने ऐसी मार्मिक सूक्ति नहीं लिखी। ऋग्वेद कहता है - **'त्वमस्माकं तव स्मसि'**। (8 । 92 । 32)

अर्थात् प्रभो! आप हमारे हैं और हम आपके हैं। इस सूक्ति पर ग्रन्थ-लेखक ने ठीक ही लिखा है- 'यही सम्बन्धकी पराकाष्ठा है। यहाँ सब उपमाएँ समाप्त हो जाती हैं। इससे अधिक क्या कहना चाहिये, समझ में नहीं आता।' चारों वेदों में और भी कई ग्रन्थों में इस प्रेमभाव को बहुत सुन्दर एवं हृदयस्पर्शी शैली में दर्शाया गया है। संसार के सब मतों, पन्थों एवं ग्रन्थों पर इस वैदिक विचारधारा की छाया स्पष्ट दिखती है।

कहते हैं कि एक बार लार्ड हार्डिंग हिन्दुओं के एक विराट् समारोह को देखने एक हिन्दू-तीर्थ पर आये। वहाँ महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी से उनकी कुछ धर्म-चर्चा चल पड़ी। लार्ड हार्डिंग ने कहा- देखिये, हमारे ईसाई-मत की यह विशेषता है कि हम प्रभु को प्यार से 'Heavenly Father' (आकाशस्थ पिता) कहकर सम्बोधित करते हैं। झट से भारतभूषण मालवीय जी बोले-आप तो परमात्मा को पिता कहकर पुकारते हैं हमारे धर्म में - वेदशास्त्र में इससे भी कहीं ऊँची व सूक्ष्म विचारधारा आपको मिलेगी। वेद में आता है-

'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे।।'

(ऋग्वेद 8। 98। 11)

इस ऋचा में प्रभु को पिता और माता भी कहा गया है। पितासे कहीं अधिक माता बच्चे से प्यार करती है।

अजमेर में एक पादरी 'ग्रे' रहते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के ईसाई पादरियों में उनका विशिष्ट स्थान था। उन्होंने भी एक बार हुतात्मा पं. लेखराम जी से कहा था कि वेद में ईश्वरविषयक कोई अच्छी शिक्षा नहीं है। हमारे धर्मग्रन्थ 'बाइबिल' में तो परमात्मा को पिता कहा गया है। पं. लेखराम जी ने कहा कि वेद में तो इससे भी आगे परमेश्वर को माता, पिता, बन्धु तथा सखा कहा गया है। हाँ! तुम्हारा पिता आकाशस्थ है, वेद प्रभुको सर्वव्यापक मानता है। आपने वेद की कई सूक्तियाँ जब 'ग्रे' महोदयको सुना दीं तो वे चुप हो गये। यथा -

'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता'

(यजुर्वेद 32। 90)

इस सूक्तिमें प्रभुको पिता, सखा एवं उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

'स नः पिता जनिता स उत बन्धुः'

(अर्थर्ववेद 2 । 1 । 3)

यहाँ भी परमात्मा को पिता, उत्पन्न करने वाला एवं मित्र कहा गया है। ईश्वर से सखा-भावका सम्बन्ध तो वेद की एक अलौकिक देन है।

'आर्य-प्रेरणा' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

फ़ारसी-साहित्य में सूफी कवियों में से किसी की ये पंक्तियाँ बहुत लोकप्रिय हैं-

मन तू शुदम, तू मन शुदी। मन जाँ शुदम, तू तन शुदी।।
ता कस न गोयद बाद अज़ाँ। मन दीगरम, तू दीगरी।।

हिन्दी के महान् मनीषी चमूपति जी 'चातक' ने इन पंक्तियों को ऐसे अनूदित किया है-

तन दो रहें, मन एक हो, यह साधना है प्रेम की।
संगीत का स्वर साध लो, लय एक है बाजे कई।।

यहाँ फ़ारसी-पक्तियों का शब्दशः अनुवाद तो नहीं है, परंतु ईश्वर के प्रति भक्तिभाव तथा प्रेमभाव को फ़ारसी कवि से भी कहीं अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है। ऋग्वेद की एक सूक्ति है-

'तमित् सखित्व ईमहे' (1 । 10 । 6)

अर्थात् हम ईश्वर से सखापन के लिये प्रार्थी हैं।

'स नः पितेव सूनवे।' (1 । 1 । 9)

जैसे पिता पुत्रपर दयालु है, वैसे ही प्रभु हम भक्तों पर दया रखता है। अथर्ववेद में एक स्थानपर परमेश्वर जीवों को सखा शब्द से सम्बोधित करते हैं। उस मन्त्रपर मुग्ध होकर एक कविहृदय भक्त का मन-मयूर भाव-विभोर होकर हर्ष से पुकार उठा-

'मैं मीत पै वारी, दिलजीत पै वारी, इस प्रीत पै वारी-मैं रीत (रीति) पै वारी।' ऋग्वेद (1 । 109 । 9-7) की ऋचाओं में यह विनय है-**'मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।'** अर्थात् आओ मित्रो! हम सब प्रीतिपूर्वक परमात्मा को सखा होने के लिये गद्‌गद होकर पुकारें। इन्हीं वैदिक भावनाओं से अभिभूत होकर संत श्रीतुकाराम जी ने प्यारे प्रभु से प्रीतिपूर्वक अत्यन्त भक्तिभाव से जो कुछ कहा, उसे हम आज की देशी भाषा में नोक-झोंक कह दे तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रीतुकाराम जी लिखते हैं-

नाहीं तरी तुज कोण ही पुसले। निराकारी लथें एकाकी।।

अर्थात् यदि मैं (तेरा उपासक-तुझसे प्रेम करनेवाला) न होता तो तुझ निराकार और अकेले को कौन पूछता?

इसी भजन में संत तुकारामजी अपने प्यारे प्रभु से कहते हैं कि रोग ने ही तो धन्वन्तरिको चमकाया। स्वस्थ मनुष्य वैद्यको क्यों पूछेगा? इसको आप नोक-झोंक तो कह सकते हैं, परंतु है यह प्रीतिपूर्वक। इसका रसास्वादन करने के लिये हृदय की सरलता एवं तरलता चाहिये। इस मृदुलताका रसपान वही कर सकता है, जिसने कभी माता की गोद में बैठे बालक को कल्लोल करते देखा हो। भक्तप्रवर तुकाराम के इस प्रेमालाप से श्रद्धा छलकती है और इसमें अभिमान की गन्ध लेशमात्र भी नहीं है।

जो व्यक्ति आज के तनावयुक्त विश्व में अपने जीवन को सरस बनाना चाहते हैं, उन्हें अपने हृदयमें इस आस्तिक्य- भावनाका संचार करना ही होगा। **भाव-प्रदूषण तो जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण तथा ध्वनि-प्रदूषण से भी कहीं अधिक घातक है।** विश्वमें व्याप्त भाव-प्रदूषण जटिल मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक रोगों का एक मुख्य कारण है। इस भाव-प्रदूषणरूपी महारोग की एक ही औषधि है और वह है- करुणासागर, सुधासिन्धु, दयालु, न्यायकारी और परमानन्दरूप अपने प्रेमास्पद परमेश्वर के प्यार में डूब जाना। संत तुकाराम ने प्रभु-प्रेम में डुबकी लगाकर ही इस अभंग (भजन) की रचना की थी।

आध्यात्मिक तथा मानसिक दुःखों से छुटकारा पाने या बचनेका प्रथम उपाय यही है कि मनुष्य भक्तिभाव से, प्रेमभाव से सायं-प्रातः प्रभुके अपार प्यार तथा उपकारों का चिन्तन करे। मेरे प्रभु ने सब कुछ - सारा जगत् मेरे लिये ही तो रचा है। अपने लिये उसने कुछ भी नहीं बनाया। मेरा शरीर मेरे लिये है। अपने आँखों, कानों, हाथों और पैरों का मैं ही तो उपयोग-प्रयोग करता हूँ। सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, अग्नि, फल, फूल एवं वनस्पतियाँ किसके लिये हैं? वह दाता-विधाता कभी स्वयं तो इनका प्रयोग करता नहीं। इन सबका लाभ मैं ही उठाता हूँ। जगत् का केन्द्र-बिन्दु हम ही हैं, हम ही। मित्रो! स्मरण रखो कि समस्त आस्तिक जगत् सृष्टिका रचयिता तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमात्मा को ही मानता है। प्रश्न यह है कि यह जगत् रचा क्यों गया? किसके लिये परमात्मा ने यह सृष्टि रची? वेद बड़े सरल, परंतु सारगर्भित शब्दों में इस पहेली का उत्तर देता है-

ईशा वास्तयमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। (यजु. 40 । 1)

कण-कणमें व्यापक प्रभुने यह जगत् जीवों के लिये रचा है। प्रभु इस मन्त्र में जगत् के भोगों को त्यागभाव से भोगने का उपदेश एवं आदेश देते हैं। आज सम्पत्ति ही विपत्ति का कारण बन रही है। किसी पश्चिमी विचारक ने **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** का मर्म जानकर ही तो यह लिखा था, Hoarding is the cause of all the miseries.' अर्थात् सञ्चय करते जाना ही सर्वदुःखोंका मूल है।

यह कथन तो प्रसंगवश आ गया। हम तो यहाँ यह दर्शा रहे थे कि जगत् के भीतर-बाहर व्याप्त प्रभुने जगत् रचा तो मेरे और आपके लिये, उसने भिन्न-भिन्न प्रकार की योनियाँ बनायीं तो हमारे शुभ-अशुभ कर्मोंका फल प्रदान करने के लिये, उस प्रभुने आँखसे पूर्व सूर्यको रच दिया, प्राणियों को बनाने से पूर्व पृथ्वी बना दी, जल बना दिया और वायु बना दी। आवश्यकतासे पूर्व वह प्रभु आविष्कार कर देता है। यह है उसके अपार प्यारका एक निराला चमत्कार। हम उस प्यारका चिन्तन-मनन करते रहेंगे तो आध्यात्मिक रोगों से बचे रहेंगे और प्रभु के प्रेम को प्राप्त करने में सफल हो जायेंगे। यह हमारा कर्तव्य है- ऐसी वेदकी आज्ञा है।

सम्पादकीय

आर्य समाज स्थापना दिवस

डा. भारद्वाज पाण्डेय

विगत 11 अप्रैल को आर्य समाज का स्थापना दिवस विभिन्न समाजों तथा आर्य संस्थाओं द्वारा उत्साह पूर्वक मनाया गया। इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** की उद्घोषणा करके समस्त विश्व को आर्य बनाने का नारा दिया। आर्य समाज के नियमों में इसके उद्देश्य को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा – **"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"** आर्य समाज के नियमों में विश्व मानव की सर्वांगी उन्नति का अद्भुत समन्वय है। विश्वहित का ध्यान रखकर कार्य करने वाले व्यक्तियों तथा संगठनों को इन नियमों से अपूर्व मार्गदर्शन मिलता है। इस आर्य समाज ने अपनी स्थापना काल से ही विश्वशान्ति और विश्व बन्धुत्व के लिए अद्भुत कार्य किए हैं। आज आर्य समाज की अनेक संस्थायें ऋषि की मान्यता के अनुसार सामाजिक सुधार और राष्ट्र निर्माण का कार्य कर रही हैं। वैदिक धर्म के सिद्धान्त आर्यत्व के सर्वथा अनुरूप, व्यावहारिक तथा उपयोगी हैं। इसकी मान्यताएं सर्वथा वैज्ञानिक, वेदानुकूल, तर्क एवं प्रमाणयुक्त हैं। आर्य समाज सभी को स्नेह, प्रेम के साथ जीवन जीना सिखाता है। आर्य समाज की यह सुदृढ़ मान्यता है कि परमात्मा-प्रदत्त समस्त पदार्थ सभी प्राणियों के लिए हैं। सभी को वेद पढ़ने का, वेदानुसार धार्मिक जीवन जीने का और स्वराज्य का पूर्ण अधिकार है। शासित-शासक, छुआछूत, ज्येष्ठ-कनिष्ठ की भावना समय-समय पर संकीर्ण सोच रखने वाले सम्प्रदायों की देन है। परमात्मा सर्वथा पक्षपात रहित है। उसकी व्यवस्था में सबको समानता का अधिकार प्राप्त है। वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के कार्य को आगे बढ़ाने तथा उन्नति के शिखर तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व हम सबका है। परमात्मा आर्य जाति को वह शक्ति दे कि हम इस उद्देश्य पूर्ति में सक्षम हो सकें।

सत्य गुरू विराजनन्द जी दण्डी

इस समय विरजानन्द के चित्त में सर्वोपरि एक यही संकल्प था कि किसी कोलाहलशून्य, पवित्र और प्रीतिप्रद स्थान को ढूंढ़कर, वहीं जीवन का शेष भाग यापन करें और उसके साथ ही ज्ञान-धर्म का अनुशीलन करके जीवन की सार्थकता सम्पादन करें। हमारे विचार में इसी संकल्प से प्रेरित होकर ही वे गंगा तट प्रदेश की ओर लौटे थे और उस प्रदेश में सोरों को सर्वापेक्षा सिद्धि के अनुकूल समझ कर वहां आऐ थे।

स्वामी विरजानन्द ने सारों में पदार्पण किया था, उस समय भी गंगा का प्रवाह सोरों के प्रान्तवर्ती नहीं था। इसी कारण वह सोरों में नहीं बल्कि सोरों के पास ही गाड़ियाघाट गंगा के तट पर रहे। इससे भिन्न गाड़ियाघाट साधु संन्यासी विरक्त वैरागी जन का आश्रयस्थल कह कर भी प्रसिद्ध था।

सोरों में आकर भी पुनः उसी व्याकरण में संलग्न हो गए। क्या प्रज्ञाचक्षु व्याकरण की पुनः-पुनः आलोचना इसी हेतु करने लगे कि वह अतीव दुरूह शास्त्र है? व अपने को 'व्याकरणसूर्य' बनाने के लिए ही लिया कि यह मनुष्य एक ओर त्याग और...............

वे एकाग्रचित होकर अविच्छेद रूप से उसके अनुशीलन में प्रवृत्त हुए। भारतवर्ष में केवल वाराणसी ही विदुष्मती नाम से प्रसिद्ध है किन्तु विनय सिंह के प्रभाव के कुछ समय के लिए अलवर की राजधानी भी विदुष्मती के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी। विनय सिंह के राज्यकाल में अलवर की प्रसादभूमि कुछ समय के लिए लक्ष्मी और सरस्वती की सम्मिलित भूमि गिनी जाने लगी थी। जब विरजानन्द के साथ बातचीत करके तदुच्चारित विष्णुस्त्रोत को सुनकर, उनकी रीति-प्रकति का कुछ पर्यालोचन करके विनय सिंह ने जान में क्लेश न हो। ओजस्विता की और दूसरी ओर प्रतिभा और पवित्रता की मूर्ति है तो फिर उन्हें अलवर लाने का अनुरोध करना महाराज विनय सिंह के लिए सर्वाश में ही संगत क्यों न होता? उन्होंने यह स्वयं भी अनुभव कर लिया था कि विरजानन्द के अलवर में आकर रहने से अलवर की राजसभा और भी उज्ज्वल हो जाएगी, अलवर की सारस्वत सम्पदशाला और भी संवर्द्धित हो जाएगी। विरजानन्द के रहने के लिए कटरा जगन्नाथ के मन्दिर के पास एक गृह निर्दिष्ट हुआ, भोजन सामग्री राजभण्डार से नियमपूर्वक आने लगी और स्वेच्छा अनुरूप व्यय करने के लिए प्रतिदिन एक रूपया देने की आज्ञा हुई। मित्रसेन नामक ब्राह्मण स्वामी जी का रसोइया नियत हुआ। विद्यार्थी प्रेमसुख केवल विद्यार्थी बनकर ही नहीं रहा, वह इस विषय में भी सर्वदा सावधान रहने लगा, जिससे गुरुदेव को किसी अंश वे अंगदराम के साथ अपने उसी प्रीतिनिकेतन सोरों के उसी..........

विनय सिंह व्याकरण पढ़ने में प्रवृत्त हुए। विरजानन्द ने उन्हें लघु कौमुदी पढ़ानी आरम्भ की। परन्तु विनयसिंह ने जब यह अभिप्राय प्रकट किया कि ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे यह थोड़े ही समय में व्याकरण पर अधिकार प्राप्त कर सकें तो विरजानन्द जी ने भी उसका अनुमोदन किया और वह व्याकरण के एक नए ग्रन्थ की रचना में लग गए और शीघ्र ही शब्दबोधन पुस्तक संकलित हो गई।

विरजादनन्द संवत् 1901 में आए थे और अलवर में तीन-चार वर्ष रहे। अलवर छोड़कर दण्डी जी कहां गए? सुरसिरित्विधीत गड़ियाघाट पर जाकर

– शेष पृष्ठ 9 पर...

आत्मा का सच्चा स्वरूप

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद विषय में लिखे महर्षि दयानन्द सरस्वती के इन शब्दों को "जो कोई वेदों के अनुकूल अर्थात आत्मा की शुद्धि आप्त पुरुषों के ग्रन्थों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जान के कहता है उसका भी वचन सत्य ही होता है। और जो केवल अपनी बुद्धि से कहता है वह ठीक ठीक नहीं हो सकता।" पढने और सोचने के बाद ही मैंने आत्मा के विषय पर कुछ सोचने और कहने का प्रयास किया है।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

व्युत्पत्ति – आत्मा संस्कृत का शब्द है जो "अत सातत्यगमन धातु से सिद्ध होता है। यह धातु निरन्तर गमन करने के अर्थ में आती है। चूँकि यह कर्मानुसार निरन्तर भिन्न-भिन्न शरीरों अथवा योनियों में गमन करता है, इसलिए इसको "आत्मा" कहते हैं।

जीव और आत्मा में भेद – जीव उसको कहते हैं जो शरीर में ठहरा हुआ हो और जिसका मन, बुद्धि और इन्द्रियों आदि से सम्बन्ध हो। जो शरीर में ठहरा हुआ न हो, उसकी संज्ञा "आत्मा" है।

सांख्यदर्शन का यह सूत्र इस बारे में प्रमाण है:- **विशिष्टस्य जीवत्त्वमन्वयव्यतिरेकात्** -6/63

अर्थात शरीर से सम्बन्ध की विशेषता के कारण इसकी जीव संज्ञा है। शरीर से सम्बन्ध न होने के कारण यह आत्मा कहलाता है।

आत्मा का अस्तित्व –
"अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावत" सांख्य-6/1

साधक प्रमाण होने पर वस्तु का अस्तित्व सिद्ध होता है, और बाधक प्रमाण होने पर वस्तु का अभाव सिद्ध होता है। कोई भी बाधक प्रमाण न होने से आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया जाना चाहिए।

आत्मा दिखाई क्यों नहीं देता–

चरकसंहिता में पदार्थों के होते हुए भी उनका साक्षात् न होने के 8 कारण बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं। अत्यन्त समीप होना, अत्यन्त दूर होना, ढका हुआ होना, इन्द्रियों का दुर्बल होना, मन का ध्यान उधर न होना, समान आकार वाले पदार्थों में मिल जाना, किसी शक्तिशाली पदार्थ से दब जाना तथा अत्यन्त सूक्ष्म होना। आत्मा के दिखाई न देने में हेतु उसका सूक्ष्म होना है। दिखाई न देने का अर्थ यह नहीं है कि पदार्थ है ही नहीं या उसका नाश हो गया। नाश किसी चीज का नहीं होता, केवल अदर्शन हो जाता है। नाश को समझाने के लिये स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्यमूमिका में यह दृष्टान्त दिया है कि "कोई मनुष्य मिट्टी के ढेले को पीस के वायु के बीच में बल से फैंक दे, जैसे वे छोटे-छोटे कण आंख से नहीं दीखते। क्योंकि (णशं) धातु का अदर्शन ही अर्थ हैं।" कपिल मुनि ने नाश का लक्षण इस प्रकार किया है। **"नाशः कारणलयः** -1/86

अर्थात कार्य का अपने कारणों में लय हो जाना या छिप जाना ही नाश कहलाता है।

ईश्वर और प्रकृति की तरह जीव भी अनादि है अर्थात जिसका आदि कोई कारण व समय न हो, उसको अनादि कहते हैं।

आत्मा की संख्या कितनी है – आत्माओं की संख्या नियत है, परन्तु कितनी है, यह केवल ईश्वर ही जानता है। आत्माओं की जितनी सख्या है, उतनी ही रहती है, उसमें न्यूनाधिक्य (कमोवेशी) नहीं हो सकती क्योंकि न कोई नयी आत्मा उत्पन्न होती है और न ही किसी विद्यमान आत्मा का नाश होता है। अनादि और अविनाशी होने से आत्मा की उत्पत्ति और विनाश का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके द्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थों का उत्पन्न होना उत्पत्ति कहलाती है। प्रकृति की परमाणरूप अवस्था नाश कहलाती है। अदर्शन को ही नाश कहते हैं।

आत्मा के लक्षण –

इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मये लिङ्गमिति।।
-न्यायदर्शन

अर्थात (इच्छा) पदार्थों की अभिलाषा
(द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर
(प्रयत्न) पुरुषार्थ, बल (सुख) आनन्द
(दुःख) विलाप अप्रसन्नता
(ज्ञान) विवेक, पहिचानना, आत्मा के लक्षण हैं। इनमें से यदि एक भी लक्षण पाया जाये, तो भी आत्मा की विद्यमानता स्वीकार करनी चाहिये।

आत्मा की पहचान कौन कर सकता है–

प्रत्येक मनुष्य "आत्मा" को नहीं पहचान सकता जैसा कि गीता में कहा है–
"उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानो वा गुणान्छितम् विमूढ़ा न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः–

अर्थात शरीर छोड़ कर जाते हुये को, शरीर में ठहरे हुए को, इन्द्रियों के विषयों का भोग करते हुए को तथा गुणों (सत्व् रज् तमस) से आत्मा को मूर्ख पुरुष नहीं देखते वे ही देखते हैं जिनके ज्ञान चक्षु खुले हुये हैं।

क्या आत्मा एक योनि से दूसरी योनि में जाता है–

हाँ, आत्मा कर्मानुसार एक योनि से दूसरी योनि में जाता है। एक योनि से दूसरी योनि में जाना इसके अपने अधिकार में नहीं है क्योंकि यदि ऐसा हो तो यह अपनी इच्छा से नीच योनियों में क्यों जावे? यह व्यवस्था केवल ईश्वर के हाथ में है। वही इसको कर्मानुसार एक

– शेष पृष्ठ 9 पर...

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज राजेन्द्र नगर नई दिल्ली–60 का 61वाँ वार्षिकोत्सव एवं अथर्व–वेदीय वृहद्यज्ञ का कार्यक्रम दिनांक 22 अप्रैल से 28 अप्रैल तक बड़े ही उत्साह पूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन सायं 7 से 9 बजे तक वेद प्रचार का विशेष कार्यक्रम हुए, जिसमें श्री अंकित शास्त्री जी के समधुर भजन के पश्चात् आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. श्री प्रेमचन्द जी श्रीधर एवं डॉ. महेश जी विद्यालंकर के वेद मन्त्रों पर आधारित हृदयग्राही उपदेश हुए। प्रातः कालीन सत्र में यज्ञ के कार्यक्रम में आर्य जनता ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। दिनांक 27 अप्रैल शनिवार को आर्य महिला सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें दिल्ली प्रदेश की आर्यसभाओं से अनेक आर्य महिलायें उपस्थित थीं। इसी दिन सायं 7 से 9 बजे तक भजन सन्ध्या का विशेष कार्यक्रम रखा गया था। इसमें श्री धीरेन्द्र दत्त शास्त्री जी (फरीदाबाद) एवं श्री अंकित शास्त्री जी ने अपनी मधुर वाणी से अदभुत समां बांधा। प्रस्तुत किए गए भजनों की उपस्थित आर्य जनता ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। 28 अप्रैल प्रातः यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद ध्वजोत्तन हुआ। ध्वज फहराने के बाद आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया गया जिसका विषय था–**"युवाशक्ति का मार्ग दर्शक–आर्य समाज।**

सम्मेलन में अनेक आर्य नेताओं तथा विद्वानों ने भाग लिया। जिनमें मुख्य थे – श्री रामनाथ जी सहगल, आशुकवि श्री विजय गुप्त जी, श्री हरबंशलाल कोहली जी, श्री मनजीत सिंह खन्ना (पूर्व पार्षद) ओजस्वी वक्ता श्री गवेन्द्र शास्त्री जी एवं श्री कैलाश शास्त्री जी, श्री अंकित शास्त्री जी आदि। वक्ताओं ने वैदिक समाज के निर्माण के लिए युवावर्ग का आह्वान किया। समारोह की अध्यक्षता डॉ. भारद्वाज पाण्डेय जी ने की। समाज के यशस्वी प्रधान एवं सुप्रसिद्ध आर्य नेता श्री अशोक सहगल जी ने आजीवन समाज सेवी श्रीमती अमृत रानी आर्या एवं प्रसिद्ध उद्योगपति श्री के.एल. गंजू को प्रशस्तिपत्र देकर सम्मानित किया। दिनांक 21 अप्रैल को सम्पन्न हुए बाल सम्मेलन के सफल प्रतिभागी छात्र/छात्राओं को आर्य समाज के अनन्य सहयोगी एवं उपप्रधान श्री राजकुमार जी बजाज एवं श्री सुरेश चुघ जी ने विशेष रूप से पुरस्कृत किया। इस अवसर पर एक मौखिक क्विज प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। अन्त में आर्य समाज के कर्मठ मन्त्री श्री सतीश चन्द मैहता जी ने कार्यक्रम की सफलता के लिए सभी सहयोगियों का धन्यवाद किया। बजाज परिवार द्वारा आयोजित ऋषिलंगर के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

"प्रि. चित्रा नाकरा जी की इज़रायल यात्रा"

प्रख्यात् शिक्षाविद, वैदिक संस्कृति एवं मूल्यों के प्रति अगाध–निष्ठावान, शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रपति पदक तथा अन्य अनेकों पुरस्कारों एवं सम्मानों से विभूषित वेदव्यास डी.ए.वी. स्कूल की प्रधानाचार्य "श्रीमती चित्रा नाकरा जी" इज़रायल सरकार के विशेष अनुरोध पर भारत सरकार द्वारा प्रेषित उस विशिष्ट प्रतिनिधि मण्डल की प्रतिनिधि सदस्या रहीं जिन्होंने इज़रायल की विशेष शैक्षणिक यात्रा की। उनके अनुसार इज़रायल के लोगों के हृदय में भारत देश के प्रति अपार सम्मान एवं स्नेह के भाव विद्यमान हैं। यहूदी समुदाय स्वयं को भारतीय वंश परम्परा में प्रख्यात् चक्रवर्ती सम्राट "यदु" का वंशज अनुभव करता है।

अपनी संस्कृति एवं मूल्यों के रक्षण में इज़रायल के लोग सतत् क्रियाशील हैं, वह जागे हुए योद्धाओं का देश है उनमें राष्ट्रप्रेम तथा देश भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई हैं। वहाँ के लोग अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा भाषा पर गर्व का अनुभव करते हैं। "हिब्रू" वहाँ की राष्ट्रभाषा है जो वैदिक भाषा के अति निकट है। उन लोगों ने अपने बलबूते पर रेगिस्तान के बंजर–विहड़ों को शस्य श्यामला भूमि में परिवर्तित कर दिया। वे अपने संयन्त्रों से सागर के खारे पानी को मीठे पानी में बदल कर अपने देश वासियों की प्यास बुझा रहे हैं। हरित ग्रहों (ग्रीन हाऊस) में वे फल–फूल अनाज आदि का अति वैज्ञानिक विधि द्वारा उत्पादन करते है। वहाँ का बच्चा–बच्चा अपनी पुरातन संस्कृति तथा अपने शहीदों पर देवताओं की तरह गर्व अनुभव करता हुआ उनके पदचिन्हों पर चलकर अपने देश को स्वाभिमान एवं स्वतन्त्रता के दिव्य शिखरों पर सुशोभित करना चाहता है। इज़रायल से हमारे देशवासी अनुशासन, कर्त्तव्यनिष्ठा, देश भक्ति तथा विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रहने के लिए अदम्य जिजीविषा की शक्ति और शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रि. चित्रा नाकरा जी जो आर्यसमाज की प्रधाना भी हैं ने वहाँ आयोजित सेमीनार में वेद की पवित्रतम ऋचा "शान्ति मन्त्र" का पाठ तथा उसकी शिक्षाओं पर अपने विशेष विचार रखे जिसे सुनकर सारा प्रतिनिधि मण्डल तथा इज़रायल वासी लोग भाव विभोर हो गये। वे दस दिन की यात्रा से प्राप्त अनुभव सुख, शान्ति, समृद्धि, अदम्य साहस, शौर्य तथा देशभक्ति की भावनाओं को प्रखरतम बनाती रहेंगी।

आर्य समाज राजेन्द्र नगर नई दिल्ली–60 का 61वाँ वार्षिकोत्सव कार्यक्रम के विहंगम दृश्य

अथर्ववेदीय वृहद् यज्ञ में मन्त्रपाठ करते आचार्यगण

श्री के.एल. गंजू का अभिनन्दन करते हुए आर्य समाज के यशस्वी प्रधान श्री अशोक सहगल जी।

पुरस्कृत प्रत्याशी को सम्मानित करते हुए समाज के मन्त्री श्री सतीशचन्द मैहता जी।

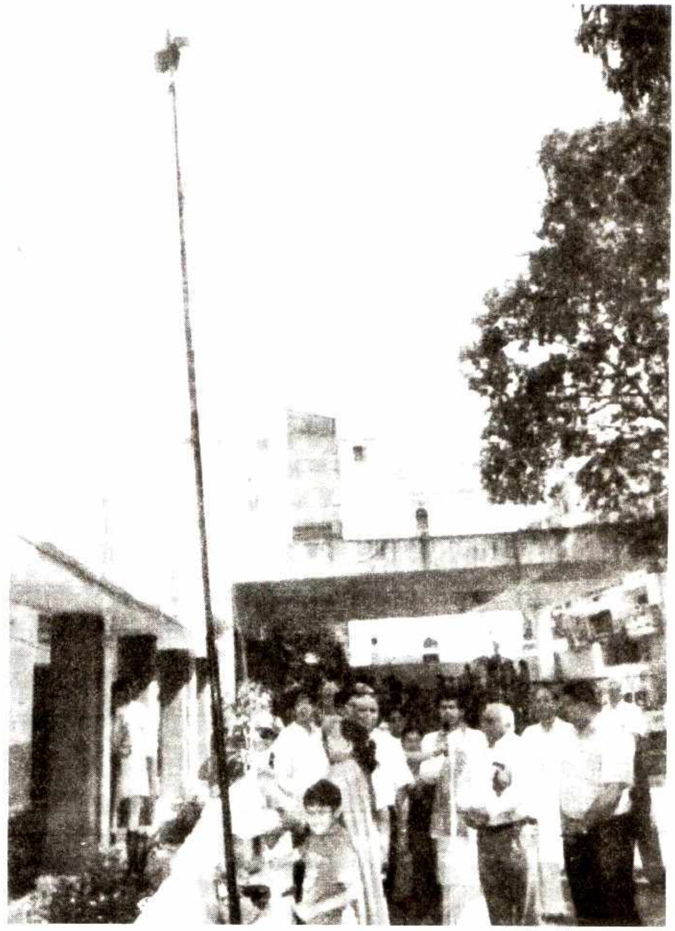

वैदिक ध्वजारोहण का विहंगम दृश्य

श्रीमती अमृत आर्या का अभिनन्दन करते हुए आर्य समाज के यशस्वी प्रधान श्री अशोक सहगल जी। साथ में श्री सुनील आर्या जी।

बाल सम्मेलन में पुरस्कृत प्रत्याशी को सम्मानित करते हुए वरिष्ठ कार्यकारी मन्त्री श्री नरेन्द्र वलेचा जी एवं श्री सतीश कुमार जी।

सुप्रसिद्ध आर्य नेता श्री रामनाथ जी सहगल का स्वागत करते हुए श्री सतीश मैहता जी एवं श्री नरेन्द्र वलेचा जी।

आर्य महासम्मेलन में बोलते हुए आर्य समाज के प्रधान एवं अग्रणी आर्य नेता श्री अशोक सहगल जी।

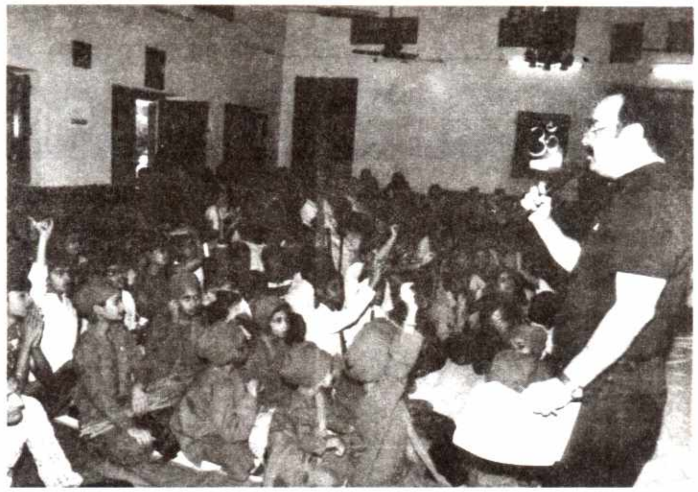

बाल सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए वरिष्ठ उपप्रधान श्री राजकुमार जी बजाज

सभा को सम्बोधित करते हुए पूर्व पार्षद श्री मनजीत सिंह खन्ना जी

सभा में कविता पाठ करते हुए आशुकवि श्री विजय गुप्त जी।

आर्य साहब की छठी पुण्य तिथि पर

"कहाँ चले गये तुम"
यादों के ढेर पर बैठा कर,
मन में प्रभु प्रेम की ज्योत जगा कर,
अज्ञान अविद्या का आवरण हटा कर,
जीवन को सच्चा रास्ता दिखा कर,
"कहाँ चले गये तुम"
मूक बन्द आँखों से,
जब ध्यान करती हूँ,
आप के साथ बिताया सारा जीवन,
चित्रित हो जाता है,
साथ बिताये खरे मीठे पल
मन की भावनाओं में उभर आते हैं
एकदम साकर हो कर कहते हो
मैं तो खड़ा हूँ तेरे साथ
तेरे विचारों में, तेरे मधुर स्पन्दन में
मेरी भाषा सजग हो रही है
तेरी अन्तंर वेदना में
मेरे अर्न्तर्निहित विचारों का प्रवाह
उद्धेलित हो रहा है मेरे अंश में,
वेद प्रचार, वैदिक अराधना
प्रवाहित हो रही है उनके जीवन में
मेरी प्रतिध्वनि गूँज रही है
उनके कार्यकलापों में,
हिन्दुत्व का दीवानापन
असर दिखा रहा है उनके भावों में
प्रभु की अरॉधना का आनन्द
जीवन की सच्ची पूंजी है
इसी में मन की शान्ति लक्ष्य की
ओर बढ़ने की प्रेरणा है
जो हमारा स्वप्न था।

"विवेक सहगल की पुण्य तिथि पर"

माली ने फूलों को लगाया
बगीचा सजाने को
फूला फला पुष्प
बगीचे की शोभा बना
विश्वकर्मा का न्याय तो देखो
संस्कारों से पूर्ण पुष्प,
जब खूशबू देने को आया,
तोड़ डाला उस सुन्दर पुष्प को
माली सोच ना सका
विधि के न्याय को,
कोसता रहा कर्म कहानी को,
यह कैसा तेरा दस्तूर निराला,
तूने बगीचे की शोभा को मसल डाला
आर्य प्रचारक, आर्य साधना में रत
क्या? पहचान देता जमाने को
अभी तो बहुत कुछ करना था उसने
मैंने तो स्वप्नों की
बिसात बिछाई थी
कुछ तो पूर्ण करने देता
विवेक के विवेकपूर्ण कार्यों द्वारा
जग में सुगंधि तो
बिखेर ना देता
मन में एक आवाज उभरी
लक्ष्य को पाने के लिए
बहुत दूर-दूर उचाँईयों तक
जाना था उसको।

-अमृत आर्या प्रधाना,
(बहावलपुर, स्त्री समाज)

हार्दिक धन्यवाद

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री सुशील सलवान जी अध्यक्ष सलवान पब्लिक स्कूल नई दिल्ली ने आर्य समाज के सत्संग हाल के लिए दो एअरकंडीशनर दिये हैं। आर्य समाज राजेन्द्र नगर इस पुण्यकार्य के लिये उनका हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करता है। यह पुण्य कार्य आर्य समाज राजेन्द्र नगर के उपमन्त्री श्री सुनील आर्य जी सुपुत्र स्व. श्री नेभराज आर्य जी की सत्प्रेरणा से हुआ है। हम सब उनके इस सात्विक सहयोग के लिए अत्यन्त आभारी हैं।

- मंत्री

- शेष पृष्ठ 3 का...

पहुंचे। इस बार वे सोरों में आकर मथुरादास की कुटी में रहे। सम्पूर्ण में स्वास्थ्य-लाभ कर लेने पर विरजानन्द ने गड़ियाघाट पर और अधिक ठहरना न चाहा। सोरों छोड़कर वे मुरसान आए। मुरसान के राजा टीकमसिंह ने विशेष श्रद्धा के साथ उनका आतिथ्य किया। मुरसान से भरतपुर आकर वहां के राजा बलवन्त सिंह के आश्रम में कुछ दिन रहे। अष्टाध्यायी और महा भाष्य के उज्वलतर आलोक से और अपनी अनन्यसाधारण मेधा और विचारशक्ति के प्रभाव से दण्डी विरजानन्द में इस प्रकार की अभिज्ञता उत्पन्न हो गई थी कि यदि उनके पास कोई संस्कृत ग्रन्थ पढ़ जाता था तो उसके पठन-पाठन से यहां तक कि उसके दो चार श्लोकों को सुनने मात्र से वे तत्क्षण ही कह देते थे कि वे ग्रन्थ आर्ष हैं वा अनार्ष। इस अभिज्ञतारूपी प्रदीप्त बत्ती को हाथ में लेकर विरजानन्द हिन्दुओं के विशाल शास्त्र भण्डार में प्रविष्ट हुए।

भाष्यों में से विरजानन्द एक महाभाष्य को मानते थे। महाभाष्य पाणिनिक तथा अष्टाध्यायी का भाष्य है। वह भाष्य अद्वितीय है। जैसे कि कोई अष्टाध्यायी ग्रन्थ में व्युत्पन्न हुए बिना वेदादि शास्त्रों का मर्मग्राही नहीं हो सकता ऐसे ही महाभाष्य को विशेष रूप से जाने बिना अष्टाध्यायी का मर्मोच्छेद नहीं किया जा सकता। इसी कारण दयानन्द को पाणिनी के साथ महाभाष्य को भी पढ़ाने लगे। पढ़ते समय बीच-बीच में गुरूदेव के साथ शिष्य का वाग्युद्ध भी हो जाया करता था। यद्यपि विरजानन्द वाग्युद्ध में विशारद थे परन्तु दयानन्द भी एकदम चुप होने वाले नहीं थे। सुतरां यह वाग्युद्ध कभी-कभी घोरतर रूप धारण कर लेता था। इस सूत्र में शिष्य की सुशोणित मेधा और विशेष तर्क पटुता का परिचय पाकर विरजानन्द मन ही मन अतीव प्रसन्न होते थे। और कभी-कभी दयानन्द को 'कालजिह्व' कहकर पुकारते थे।

विरजानन्द ने अपने इसी शिष्य को संसार को वैदिक मार्ग पर लाने का कार्य सौंपा।

-साभार दिव्य वैदिक ज्ञान ज्योति

– शेष पृष्ठ 4 का...

योनि से दूसरी योनि में भेजता है।

योनियां कितनी प्रकार की हैं?

योनियां 4 प्रकार की हैं।

1. जेरज योनि (गर्भ से)
2. अन्डज योनि (अन्डे से)
3. उद्भिज् योनि (पृथिवी को फोड़ कर)
4. स्वेतज योनि (पसीना आदि से)

जीवन और मृत्यु क्या है?

आत्मा का शरीर में प्रवेश करना जीवन कहलाता है और शरीर से अलग हो जाने का नाम मृत्यु है। दूसरे शब्दों यूँ भी कह सकते हैं कि आत्मा का शरीर धारण करना बन्धन है और शरीर छोड़ देना मुक्ति है।

आत्मा के बन्धन का कारण क्या है और मुक्ति का हेतु क्या है?

इस विषय पर सांख्य दर्शन में बड़ी लम्बी चौड़ी बहस है। उसमें यह बताया गया है कि काल, देश, अवस्था, प्रकृति, कर्म में से कोई भी बन्धन का कारण नहीं है। अन्त में सांख्य दर्शन के कर्ता कपिल मुनि अपना निर्णय देते हुये कहते हैं कि– **"प्रकारान्तसंभवाद विवेक एवं बन्धः**

अर्थात् किसी अन्य प्रकार से बन्ध असम्भव दोने के कारण, एकमात्र अविवेक ही बन्धन का हेतु है।

यह विवेक या ज्ञान– मुक्ति का कारण क्या है और अविवेक या अज्ञान– **बन्धन का कारण क्या है?** इस विषय पर स्वामी दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सप्तमसमुल्लास में कहते हैं ।

"यथार्थ दर्शनं ज्ञानमिति"

जिसका जैसा गुण, कर्म, स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है और उस से उलटा अज्ञान। ज्ञान की प्राप्ति किस को होती है और कैसे होती है, इसपर गीता में श्लोक आते हैं, जो इस प्रकार हैं।

श्रद्धावाल्लभतेज्ञानं तत्परःसंयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परांशान्तिम् चिरेणाधिगच्छति।।"

अर्थ – जो पुरुष ज्ञान प्राप्ति में श्रद्धा रखता है और इन्द्रियों को वश में रखता हुआ ज्ञानप्राप्ति में तत्पर होता है– उसी को ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान प्राप्त करके परमशान्ति उसको बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

"तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

अर्थ – उस ज्ञान को प्राणिपात अर्थात् नमस्कार के द्वारा, प्रश्नोत्तर के द्वारा और सेवा के द्वारा ज्ञान। वे तत्वदर्शी ज्ञानी लोग (ऐसा करने पर) तुझे ज्ञान का उपदेश करेंगे।

इस विषय पर अपनिषद का यह वचन प्रमाणिक माना जाता है:–

"ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।"

अर्थात पुरुषों के पाप क्षीण होने पर उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होती है।

इति नारायणदास "प्रयासी"

जागृत हैं मृदु स्मृतियां अतीत की

– स्व. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

निकल पड़े तममयी रजनी में, सच्चे शिव की खोज लगाने।
अमरत्व प्राप्त हित ऋषिदयानन्द, आये थे वेद ज्ञान फैलाने।।

दुर्गम शैल कण्टक बन बीती मौसम गर्मी शीत की।
जागृत हैं मद्र स्मृतियां अतीत की।।1।।

फूंका आर्य जाति में जीवन जन जन में भर जोश गये।
होय स्वदेशी शासन अपना कर प्रथम उद्घोष गये।।

अमित मुदित अति उल्लसित हो कर प्रकार से जीत की।
जागृत हैं मृदु स्मृतियां अतीत की।।2।।

शुचि स्नेह सूत्र में जाति रत्न बिखरों को पुनः पिरोया था।
मानवोद्धारक सत्य वक्ता ने ऊंच नीच का धब्बा धोया था।

रूढ़िवाद पाखण्ड ढोंग की मिट्टी खूब पलीत की।
जागृत हैं मृदु स्मृतियां अतीत की।।3।।

वेद ज्ञान की ज्योति सकल अवनितल पर लगा कर गये वह।
दिशाभ्रान्त यात्रियों के वैदिक पथ बतलाकर गये वह।।

अणु अणु में व्यापक प्रभु है ओ३म् नाम से प्रीत की।
जागृत हैं मृदु स्मृतियां अतीत की।।4।।

ध्रुव सब सतत् रहे अविचल सुखद शान्तिमय बीज बो गये।
अमित लग्न अनवरत परिश्रम मरकर ऋषिवर अमर हो गये।।

शुचि आर्य ज्ञान के प्रचारार्थ उम्र सारी व्यतीत की।
जागृत हैं मृदु स्मृतियां अतीत की।।5।।

भारतीय अंक गणित की प्रगल्भता

– सतीश गोगटे

(यह वर्ष गणित वर्ष के रूप में मनाना निश्चित हुआ है, इस निमित्त यह मजेदार जानकारी प्रस्तुत है।)

1,000, 000, 000, 000, 000,
000, 000, 000, 000, 000, 000,
000, 000, 000, 000, 000, 000,
000, 000, 000, 000, 000, 000,
000, 000, 000, 000, 000, 000,

यह संख्या आप गिन सकते हैं?

गिनते समय एक हजार करोड़, एक लाख करोड़, इस प्रकार नहीं गिनना, सीधा अन्तिम संख्या तक गिनना। यह संख्या है, एक पर छियानवें शून्य की। इस संख्या को कहते हैं, दशअनंत। आपको लगता होगा कि मैं यह सब कैसे जानता हूँ?

मैं जब छोटा था, तब मेरे मन में एक प्रश्न बार बार उठता था। एक करोड़ गिनने के बाद आगे की संख्या किस प्रकार गिनी जायेगी? तो उत्तर मिलता, खर्व, निखर्व, असंख्य आदि। परन्तु इसकी स्थति पूछने पर, एक ऊपर कितने शून्य होने पर खर्व या निखर्व या असंख्य, तब इसका उत्तर नहीं मिलता। पुराणों की अथवा इतिहास की कथाएँ पढ़ते हैं तो 'उसके पास अपार सम्पत्ति थीं, ऐसे वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। परन्तु अपार सम्पत्ति अर्थात् कितनी सम्पत्ति, इसका अंदाज नहीं होता। अगर ऐसी गिनती प्राचीन समय में कर सकते थे, तो आज उसकी जानकारी कहीं पर भी क्यों नहीं मिलती? इस प्रश्न का उत्तर किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता था।

ऐसे में एक दिन मार्ग चलते एक कागज मिला, जिसमें अचानक यह जानकारी मिली। उसी जानकारी को आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

प्रचलित अंग्रेजी पद्धति के अनुसार 'अरब' से बड़ी संख्या गिनती हो तो उसके लिये स्वतन्त्र शब्द नहीं। इसे पहले की संख्या के नाम जोड़कर बोलना पड़ता है।

उदाहरण के रूप में 1,00,00,00,000) (एक पर नौ शून्य) को एक अरब बोला जाता है, परन्तु एक शून्य बढ़ने पर दस अरब, दो शून्य बढ़ने पर सौ अरब, तीन शून्य बढ़ने पर एक हजार अरब, चार शून्य बढ़ने पर दस हजार अरब... आदि आदि। जैसे लाख के बाद करोड़ और करोड़ के बाद अरब आते हैं, ऐसे अरब के बाद कुछ भी नहीं। परन्तु ऐसे स्वतन्त्र नामों वाली संख्या की सूची नीचे दी गई है, इसे जरा देखो। इसमें से कुछ नाम भले ही इतिहास व पुराण की कथाएँ पढ़ते समय कान में पड़े होंगे, परन्तु उसकी गिनती का अंदाज नहीं लगा होगा।

मुझे मिला हुआ यह कागज एक पुस्तक का कागज था। इस पुस्तक की मैंने बहुत खोज की परन्तु मुझे वह पुस्तक नहीं मिली। इस पुस्तक में ऐसी अनेक आनन्ददायक जानकारी होगी, परन्तु इसके लेखक, प्रकाशक या प्राप्तिस्थान के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। अगर आपको कोई जानकारी हो तो, मुझे अवश्य बताना। तो अब पढ़ना शुरु करो!

एकं, दशं, शतं, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दश कोटि, अर्व, दश अर्व, खर्व, दश खर्व, पद्म, दश पद्म, नील, दश नील, शंख, दशशंख, क्षति, दशक्षति, क्षोभ, दशक्षोभ, ऋद्धि, दशऋद्धि, सिद्धि, दश सिद्धि, निधि, दशनिधि, क्षोणी, दशक्षोणी, कला, दशकला, त्राही, दशत्राही, दशब्रह्माण्ड, रुद्र, दशरुद्र, ताल, दशताल, भार, दशभार, बुरुज, दशबुरुज, घंटा, दशघंटा, मील, दशमील, पचुर, दशपचुर, लय, दशलय, फार, दशफार, अपार, दशअपार, वट, दशवट, गिरी, दशगिरी, मन, दशमन, वव, दशवव, शंकु, दशशंकु, बाप, दशबाप, बल, दशबल, झार, दशझार, भीर, दशभीर, वज्र, दशवज्र, लोट, दशलोट, नजे, दशनजे, पट, दशपट, तमे, दशतमे, डंभ, दशडंभ, कैक, दशकैक, अमित, दशअमित, गोल, दशगोल, परिमित, दशपरिमित, अनंत, दशअनंत। दश अनंत अर्थात् जो संख्या उपर लिखी हुई है, वह। एक पर छियानवे शून्य।

हमारे पूर्वजों के पास इतनी अधिक सम्पत्ति भी थी। और इस सम्पत्ति को गिन सकें, ऐसी संख्याएँ भी थीं। कैसा अनुभव हुआ? अश्चर्य? मौज? आनंद? गौरव?

(आदित्यदीप, जनवरी–मार्च 2013 से साभार)

भारत और इन्डिया

–हुकमचन्द सांवला

भारत में गाँव है, गली है, चौबारा है।
इंडिया में सिटी है, मॉल है, पंचतारा है।
भारत में घर है, चबूतरा है, दालान है।
इंडिया में मकान है, फ्लेट है, पार्किंग प्लोट है।
भारत में काका है, बाबा है, दादा है, दादी है।
इंडिया में बस एक ही अंकल और आंटी है।
भारत में खजूर है, जामुन है और आम है।
इंडिया में मेगी है, पित्जा है और माजा है।
भारत में मटके हैं, दोने हैं, पत्तल हैं।
इंडिया में यूज एण्ड थ्रो के पाउच हैं।
भारत में गाय है, गोबर है, कंडे हैं।
इंडिया में डेअरी है, डिटर्जन्ट है, प्लास्टिक है।
भारत में दूध है, छाछ है और घी है।
इंडिया में पेप्सी, कोक और वेफर है।
भारत में तुलसी है, नीम है और बिल्व है।
इंडिया में केकटस, क्रोटन्स और बोगनवेल है।
भारत में पलंग है, गद्दे हैं और खर्राटे हैं।
इंडिया में बेड है, डनलप है और
नींद की गोलियाँ हैं।
भारत में मंदिर है, मंडप है और पांडाल है।
इंडिया में पब है, डिस्को है और हॉल है।
भारत में गीत है, संगीत है और नृत्य है।
इंडिया में डांस है, डिस्को है और आइटम है।
भारत में हजारों भाषाएँ और बोलियाँ हैं।
इंडिया में एकमात्र पूतना जैसी अंग्रेजी है।
भारत में सुख है, सन्तोष है और आराम है।
इंडिया में टेंशन है, डिप्रेशन है और प्रेशर है।
भरण–पोषण करने वाला भरत का भारत है।
स्वार्थी, निर्दयी और अंग्रेजियत का इंडिया है।
इंडिया को भी साथ में रखने वाला भारत है।
भारत में रहकर भारत को मिटाने वाला
इंडिया है।

(गतांक से आगे)

VEDIC PRAGMATISM

THE CONCEPT OF VEDIC MATERIOSPIRITUALISM

Dr. Satyavrata Siddhantalankar

At present, people misunderstand the word 'spiritualism'. It is generally thought that India is out and out a spiritual country and its culture is purely SPIRITUAL to the exclusion of Materialism. This idea has to be revolutionized because Vedic Culture is a combination of both cultures Spiritualism and Materialism. Hence I would like to call Vedic Culture as Materio spiritualism. I wish you to convey this idea to the world. Your message to the world should be that pure spiritualism divorced from Materialism is negative life and pure Materialism divorced from spiritualism is positive death.

With this preamble I proceed further in my Thesis:-

Looking for into historical perspective in Europe, we find that the Church of Rome dominated the entire hemisphere there. Christianity as expounded by the church reigned supreme. Reason was at a discount. Thinking was channelized, Martin Luther was the first man who rebelled against the dominance of the pope and ushered in an era of Reformation in the form of a Revolutionary Thought. Though Reason was installed on the pedestal of human thinking, and man was slowly inching out into the realm of freedom of thought, yet the conflict between Religion and Science, dogmatism and free thinking continued. On the other hand, divided as the Church was in the form of Roman Catholics and Protestants, they were one as regards their conflict with Science was concerned. The birth of Protestantism, though having seeds of Freedom of thought, did not reconcile itself with Scientific Concepts which the movements of reformation had naturally given birth to. Both Roman Catholics and Protestants, though fighting among themselves, were at daggers drawn against science. Galileo and Bruno to whom the world is indebted for their scientific and revolutionary discoveries were put in jail and the latter was burnt alive at stake for proclaiming his heliocentric theory. Thus is what happened in the west. The impending Revolution in thought in the form of Science was suppressed.

But the history of India tells a different tale. Here Science developed side by side with Religion. Materialism which is the product of Science, has been treated as the handmaid of Spiritualism which is the product of Religion. As related in the Upanishad, Narad, a spiritual disciple, approached Maharishi Sanat kumar, a spiritual saint, with an humble submission that though he had qualified himself in all the sciences worth the name, yet he found with in himself a void. He felt that having learnt everything that material knowledge could impart he had gained nothing for the satisfaction or his soul. We are told by the Rishi of Kath Upanishad that Nachiketa was offered all the material wealth, but he rejected it all saying that treating on that path one develops craving for more and more. In the pursuit of material things of the world there is no terminus.

But this does not mean that the Vedic view of life total neglected the material side of life. The world of matter and the physical body were accepted as inescapable realities. The world of matter that we see, and the Physical body that we inhabit are solid facts. We can neither ignore the material world nor can we neglect the physical body. These are two separate and independence entities and no lence violence; have to be accepted irrespective of the facts whether we are atheist, agonistics or otherwise. Motion in matter without presuming some power which by itself is not matter without presuming some power which by itself is not matter but is the cause of motion in matter and living body without presuming some power which by itself is not the body but is the cause of life in the body is inconceivable. That power sets movements in matter and life in the body we respectively call God and spirit and atheist or an agnostic may pride to call it by any

other name , but the facts remains that moving matter and living body presuppose some power which is not matter and not body but runs into both the Matter and the body otherwise how can matter move matter and how can body live without the life giver.

The Vedic concept of life was not one sided. It was not unadulterated Spiritualism which treated matter as a myth, nor was it unadulterated Materialism which treated spirit as a superstition. It would be correct to call it by no 'ISM' and if anything, it may be called Pragmatism or Realism. After all, all the material objects are there to be enjoyed or made use of not by matter itself, but by living beings who possess LIFE. Hence, it follows, that material objectives are there as means, as instrument for us to make use of. They are not and could not be ends in themselves. This idea has been beautifully explained in the Upanishad when Yajyavalkaya, after leading a house hold life prepares himself for Vanprashta Ashram and offers all his wealth to his wife – Maitreyee for her future Maintenance. Maitreyee asked her husband of what use this property would be to her which he himself was renouncing. Yajyavalkaya replied it will be only a means for physical comfort; it will not give the eternal bliss that human being is seeking as the bonus of life.

The quintessence of Vedic thought it is: Be the enjoyer, not the enjoyed: Be the master, not the slave: Be the subject not the object: be in the world not of the world. This is possible by following the teaching of the Gita. Non attachment – Nishkama karma – which means; Be in the world and yet be out of the world like a louts in water undrenched by its contact. Gita (3-17) calls such a being as an Atma rata, Atma Tripta, Atma Tushta. Perfect bliss lies in revelling in the self; in being filled by the self ;in being satisfied by the self; in being marged in the self. There is no tension, no fear, no want, no craving. This is the end towards which we all move though halted by diversions in between.

The whole scheme of Vedic life was chalked out on this principle. In Brachmacharya one prepared one self to be fit to enjoy the world; in Grihastha he did enjoy the world to his hearts content; in Vanprastha the terminus was reached when he became conscious by experience of the ephemeral character of the mundane attachment for life; and lastly, came Sasnyas when he detached himself off from the small petty grooves in when he had been moving all these days. He detached himself from his family, from his caste, from his caste, from his society, and even from his country. Renouncing all he became of all. At this stage he became the citizen of the world for whom every man was his brother, every family was his family, every society was his society and every country was his country. In this detachment oriented attachment and expansion of the Self he fulfilled the destiny for which the human body is given as a gift by the Almighty.

This is Materio Spiritual Revolution that an individual, the Society and the world at large needs, otherwise it will, and is, heading towards DESTRUCTION.

हमारे आधार स्तम्भ श्री शादी लाल जी

श्री शादी लाल जी अत्यधिक परिश्रमी, उत्साही, लगनशील, साहसी और निष्ठावान व्यक्ति हैं। समाज में कई बार मंत्री रहे हैं – 1983 से 1986 तक। समाज के संचालन में आपका प्रमुख योगदान रहा है। बाद में 1988 से 1991 तक व 1995-96 में आप आर्य समाज के प्रधान पद पर सुशोभित हुये। इस काल में आर्य समाज में ईश्वर दास बहल हाल का निर्माण हुआ। आपने बड़ी निष्ठा कर्त्तव्य परायणता, प्रेम और निःस्वार्थ भावना से उत्तरदायित्व निभाया। निर्माण कार्य का निरीक्षण किया तथा कार्यालय के कार्य संचालन को सुचारू रूप से संचालित किया। भूकंप पीड़ितों के लिए सहायता में आपका मुख्य योगदान रहा। आपका सम्पूर्ण परिवार भावों से भावित है। सात्विक वृत्ति सम्पन्न, सेवा और साधना की प्रति मूर्ति है। आर्य समाज राजेन्द्र नगर के एक सबसे मजबूत स्तम्भ के रूप में आप प्रशंसनीय हैं। हम आपके अच्छे स्वास्थ्य तथा दीर्घायु की सद् कामना करते हैं।

–मंत्री

Printed and published by Sh. N.M. Walecha Secretary on behalf of Arya Samaj, Rajinder Nagar and printed at Gurmat Printing Press, 1337, Sangatrashan, Pahar Ganj, New Delhi-55 Ph. : 23561625 and published at Arya Samaj, Rajinder Nagar, New Delhi-110060. *Editor :* Dr. Bhardwaj Pandey